Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July 2024 5(7), 622–626

CONTEMPORARY HINDI DRAMA: INTRODUCTION AND TRENDS
समकालीन हिंदी नाटक : परिचय और प्रवृत्तियाँ

Shashikant Rai [1]

[1] Assistant Professor, Punjab University Constituent College Patto Hira Singh

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i7.2024.4058

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Today, time is changing very fast and along with time, social, economic, political, literary etc. values are also changing. With the development of human civilization, it is natural for its environment and changes to take place. This change takes place both internally and externally. It is worth noting how much more humane, sensitive and democratic this change is. Literature determines its values by testing all these criteria. Change is the eternal law of nature. It is natural for a person to change in every way, but in contemporary times, questions can be raised about the nature of change. Because if the change is in its entirety and democratic, then it is fine, but if it is of a particular class, of a particular group, then it is natural to have questions. Therefore, the challenges of contemporary literature emerge in front of us very fast. Literature also plays an important role in this social change. The tendencies of society are expressed through contemporary and contemporary literature. The basic idea behind the creation of a drama is the change in human relations within society and the consequences of that change. The usefulness of literature is proved only in taking the welfare of the people to the highest level keeping in mind the contemporary values of life.

Hindi: आज वक्त बहुत तेजी से परिवर्तित हो रहा है और समय के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक इत्यादि मूल्यों में भी परिवर्तन होरहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ उसके परिवेश और उसमें बदलाव का होना स्वभाविक है। यह बदलाव आंतरिक और बाह्य दोनों रूपों में होता है। गौरतलब है कि यह बदलाव कितना ज्यादा मानवीय है, संवेदनशील है, और कितना ज्यादा लोकतांत्रिक है। इन सभी कसौटीयों पर कसते हुए साहित्य अपने मूल्यों का निर्धारण करता है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है हर तरीके से व्यक्ति में परिवर्तन होना स्वाभाविक है पर समकालीन समय में परिवर्तन के स्वरूप को लेकर प्रश्न उठाए जा सकते हैं। क्योंकि बदलाव संपूर्णता में हो लोकतांत्रिक हो तो ठीक है, लेकिन एक खास वर्ग का ही हो, एक विशेष समूह का ही हो तो प्रश्न होना स्वभाविक है। इसलिए समकालीन साहित्य की चुनौतियाँ हमारे सामने उभरकर बड़ी तेजी से आती है। इस सामाजिक बदलाव में साहित्य की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज की प्रवृत्तियां तत्कालीन एवं समकालीन साहित्य के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है। नाटक के रचना की मूल में समाज के भीतरी मानवीय संबंधों का बदलाव और उस बदलाव के परिणाम ही परिलक्षित होते हैं। समसामयिक जीवन मूल्यों को ध्यान में रखते हुए लोकमंगल के उच्चतम भूमि तक ले जाने में ही साहित्य की उपादेयता सिद्ध होती है।

1. प्रस्तावना

आज वक्त बहुत तेजी से परिवर्तित हो रहा है और समय के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक इत्यादि मूल्यों में भी परिवर्तन होरहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ उसके परिवेश और उसमें बदलाव का होना स्वभाविक है। यह बदलाव आंतरिक और बाह्य दोनों रूपों में होता है। गौरतलब है कि यह बदलाव कितना ज्यादा मानवीय है, संवेदनशील है, और कितना ज्यादा लोकतांत्रिक है। इन सभी कसौटीयों पर कसते हुए साहित्य अपने मूल्यों का निर्धारण करता है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है हर तरीके से व्यक्ति में परिवर्तन होना स्वाभाविक है पर समकालीन समय में परिवर्तन के स्वरूप को लेकर प्रश्न उठाए जा सकते हैं। क्योंकि बदलाव संपूर्णता में हो लोकतांत्रिक हो तो ठीक है, लेकिन एक खास वर्ग का ही हो, एक विशेष समूह का ही हो तो प्रश्न होना स्वभाविक है। इसलिए समकालीन साहित्य की चुनौतियाँ हमारे सामने उभरकर बड़ी तेजी से आती है। इस सामाजिक बदलाव में साहित्य की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज की प्रवृत्तियां तत्कालीन एवं समकालीन साहित्य के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है। नाटक के रचना की मूल में समाज के भीतरी मानवीय संबंधों का बदलाव और उस बदलाव के परिणाम ही परिलक्षित होते हैं। समसामयिक जीवन मूल्यों को ध्यान में रखते हुए लोकमंगल के उच्चतम भूमि तक ले जाने में ही साहित्य की उपादेयता सिद्ध होती है।

नाटक दर्शकों के लिए आत्मबोध का, आत्मसाक्षात्कार का, अपने को पहचानने का एक शक्तिशाली माध्यम है। साहित्य के सभी प्रारूपों में नाटक सामाजिक कला है वह अपने समाज से नाभिनालबद्ध है, उसे संबोधित करता है नाटक में युगीनबोध को आसानी से देखा जा सकता है। इसलिए नाटक में तत्कालीन सामाजिक

गतिविधियाँ मानवीय आचार-विचार, रहन-सहन इत्यादि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया जाता है। सिद्धनाथ कुमार का वक्तव्य यहाँ उल्लेखनीय है-"साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है तो यह बात सर्वाधिक नाटक के लिए सही है। यहां एक प्रश्न जरूर उठता है कि नाटककार अपनी रचना में समाज को चित्रित कर दे या उसकी समस्याओं के समाधान की दिशा में पहल भी करें? अनेक नाटककार मानते हैं कि समाज का यथा चित्र प्रस्तुत कर देना ही नाटककार का उद्देश्य नहीं। दर्शकों को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक करना भी उसका उद्देश्य है।"[1]

समय-समय पर साहित्य के निकष बदलते रहते हैं। किसी समय साहित्य का सृजन मनोरंजन के लिए रहा होगा, लेकिन जैसे-जैसे समय और बढ़ता गया मानवी क्रिया व्यापार की प्रवृतियाँ भी बढ़ती गई, और साथ ही साथ साहित्य की जिम्मेदारियाँभी इसलिए साहित्य की उपादेयता इसमें निहित है कि वह किन प्रश्नों को मजबूती के साथ उठाता है। क्योंकि हमारे समाज में शुरू से ही दो वर्ग साथ-साथ रहे हैं एक शास्त्र का रहा है और दूसरा लोक का रहा है, एक जीवन व्यापार से सजग और बँधा रहा है, तो दूसरा सहज और उन्मुक्त। इसलिए साहित्य एक ऐसी संस्कृति निर्मित करता है जिसमें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सहज रूप में मौजूद रहे। प्रत्येक युग के अपने कुछ प्रतिमान होते है लेखक उन परंपराओं से लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार करते हुए समाज को बेहतर से बेहतर बनाने या देखने की कोशिश करता है।

वस्तुतः साहित्य जनता की संवेदना को परिष्कृत करता है, वह ऐसा वातावरण सृजित करता है जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बनती रहे इसलिएसाहित्य को परिभाषित करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं-" जनता के साहित्य से अर्थ है, ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों की, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिस्थापित करता हो, उसे अपने मुक्ति पथ पर अग्रसर करता हो।"[2]

भारतीय रंगकर्म की अपनी महत्वपूर्ण पहचान रही है उसका अपना मौलिक सौंदर्य शास्त्र ,कलात्मक उद्देश्य,सृजनात्मक व्यवहार और विशेष पद्धतियां रही हैं। नाटक एक प्राकृतिक विधा है जो मनुष्य के जीवन से अनुप्राणित है। आप देखेंगे कि छोटे बच्चों को कोई सिखाता नहीं है, लेकिन वह स्वभावतः बड़े बुजुर्ग या अपने माता-पिता की नकल करना बचपन में ही शुरू कर देता है, यह कलात्मकता उसे नैसर्गिक रूप से मिली रहती है। धीरे-धीरे व्यक्ति समाज के नजदीक जाकर इस विधान को समझने का प्रयत्न करने लगा। और नाटक का स्वरूप आकार लेता इस रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार नाटक का सामाजिक पक्ष बढ़ता गया और आज तो नाटक ऐसी अवस्था तक पहुंच गया है जिसकी सामाजिक सरोकारिता हम स्पष्ट देख सकते हैं।जनता के निकट जाने की जितनी शक्ति नाटक में है, उतनी शायद अन्य विधा में असंभव हो। नाटक की विकास यात्रा के दौरान साहित्य की अन्य विधाओं के आदान-प्रदान से नाटकों के स्वरूप में भी बहुत सारे परिवर्तन हुए उनकी प्रवृत्तियों में भी कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से परिवर्तित हुए जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे। नाटक की रचना के मूल में समाज के भीतर मानवीय संबंधों में आए बदलाव और उस बदलाव के परिणाम को दिखाने की कोशिश होती है। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, राजनीति और संपूर्ण परिवेश का संबंध जितना जटिल और संश्लिष्ट होता गया है, उसे प्रमाणिक और प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करने वाली जीवंत कला 'नाटक और रंगमंच' का दायित्व और चुनौतियां भी उतनी ही कठिन होती गयी हैं। मानवीय संबंधों में सत्य,अंतर्विरोध और विडंबना,उत्तर आधुनिकता का प्रभाव, भूमंडलीकरण आदि समकालीन रंगकर्म की समस्या हैं। इसी समस्या की तरफ ब्रेख़्त ने रंगमंच की भूमिका को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए लिखा है-" हमारे रंगमंच की चिंतन की उत्तेजना को बढ़ाना चाहिए और लोगों को वास्तविकता को बदलने के आनंद में दीक्षित करना चाहिए। हमारे दर्शक केवल इतना ही सुने की प्रमथ्यु कैसे स्वतंत्र हुआ, अपितु उसे स्वतंत्र करने के उल्लास में अपने को शिक्षित भी करें। एक आविष्कार और खोज द्वारा अनुभव किए गए संतोष तथा प्रसन्नता की, मुक्तिगत द्वारा महसूस की गई विजय की भावना पाने की शिक्षा उन्हें हमारे मन से मिलनी चाहिए।"[3]

हिंदी नाटक और रंगमंच की विकास यात्रा में समकालीन हिंदी नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्णयोगदान रहा है। इसमें पूर्ववर्ती नाट्य धाराओं के विकास एवं परिपूर्णता के साथ कई नई प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास हुआ। नाटक सच्चे अर्थों में जीवन तथा जगत की यथार्थपरक कलात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना। समकालीन शब्द अपने आप में एक महत्वपूर्ण शब्द है। समकालीन से हमारा मतलब काल विशेष के प्रति जागरण का भाव है अतः समकालीनता में एक ही समय में रहने या होने का अर्थ निहित है। समकालीनता किसी रचना की प्रासंगिकता और महत्व को निर्धारित करती है अपने समय से कटी हुई रचना महान आदर्शों से प्रेरित होते हुए भी खोखली और एकांगी हो जाती है।

" समकालीनता, युग विशेष के प्रतिफलन और जीवन जगत के वैशिष्ट्य की अभिव्यंजना के रूप में साहित्य को युगीन बनाती है। हर युग का साहित्य समकालीन परिवेश को कृति के विभिन्न स्तरों पर लक्षित कर स्वयं को सार्थक बनाता है। समकालीनता मानवीय संवेदना और उसकी अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट कालगत स्वरूप है।"[4]

समकालीन हिंदी नाटक के क्षेत्र में अनेक अभिनव प्रयोग हुए हैं और उनमें समसामयिक जीवन और समाज की बहुविध समस्याओं और प्रश्नों को उठाया गया है। इस युग में नाटक और रंगमंच दोनों समृद्ध हुए हैं। नाटक का कथ्य एवं शिल्प बहुआयामी हो गया है, समकालीन हिंदी नाटकों में बोलचाल की सहजता और गतिशीलता, गति और लय की विविधता एक साथ पाई जाती है।

नाट्य कर्म की बनावट-

मनुष्य की सृजनात्मकता ही, उसे पृथ्वी पर अस्तित्वमान अन्य जीवों से, श्रेष्ठ बनाती है। मनुष्य ने अपना समाज और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा का सृजन किया। मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए सदा से ही संघर्ष करता आया है। उसके जीवन में सुख और दुख की अनुभूति संचित होती रही। जीवन की अनुभूति और ज्ञान को एकत्रित कर जब नाटककार उन्हें शब्द और कर्म के द्वारा अभिव्यक्त करता है, तभी नाटक का सृजन होता है।

मानवीय क्रिया-व्यापार से नाटक का संबंध गहरे रूप से है। यह जीवन की छाया है,उसमें जीवन की अवस्थाओं का अनुकरण होता है। संस्कृत के आचार्यों ने इसे परिभाषित करते हुए 'अवस्थानुकृति नाट्य रूप दृश्य तयोच्छेत'कहा है। यह परिभाषा अपने आप में पूर्ण है। सही रूप में देखा जाए तो अनुकरण से मनुष्य को एक आनंद मिलता है। नाटक इन्ही मानवीय भावनाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न प्रतीत होता है। नाटक विश्व का प्राकृतिक साहित्य है, इसकी उत्पत्ति के मूल में मनुष्य के आमोद-प्रमोद और अनुकरण की प्रवृत्ति है। नाटक के विषय में विभिन्न दृष्टिकोणों को जानने की जरूरत महसूस होती है इसलिए नाटक को समझने के लिए भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण को जानने की कोशिश करेंगे।

भारतीय मान्यताएँ-

भारतीय नाट्य चिंतन में नाटक को 'पंचम वेद' माना गया है। मूलतः मनोरंजन या आनंद के लिए इसका सृजन किया गया था। नाटक का महत्वपूर्ण तत्व उसकी नाटकीयता है। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होता चला आया है, आज समकालीन हिंदी नाटकों में युगबोध से उत्पन्न नाटकीयता को भली भांति नाटकों में हम देख सकते हैं।

हिंदी नाटक का व्यवस्थित स्वरूप भारतेंदु से ही प्रारंभ होता है। उन्होंने, अपने 'नाटक' (1883)नामक निबंध में देश की उन्नति के लिए नाट्य चिंतन को बढ़ाने का सुझाव दिया है। उनकी दृष्टि में नाटक-" नाटक शब्द का अर्थ है, नट लोगों की प्रक्रिया।नट वो है जो विधा के प्रभाव से अपने एवं किसी वस्तु के स्वरूप को फेरे या स्वमं दृष्टिरोचन के अर्थ फिरे। दृश्य काव्य ही संज्ञा रूपक है। रूपक में नाटक ही सबसे मुख्य है। इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं।"[5]

भारतेंदु के बाद हिंदी नाटकों को सहज सरल व बोधगम्य बनाने के लिए मोहन राकेश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने नाट्य चिंतन को अपनी बौद्धिक अभिव्यक्ति का साधन नहीं बनाया। इन्होंने नाटक का ऐतिहासिक परिवेश और युगबोध को, नाटक की रचना प्रक्रिया एवं नाटककार और रंगमंच संबंधित अन्य सहजता को अपने नाटकों में स्थान दिया।

प्रसिद्ध नाटककार डॉ लक्ष्मी नारायण लाल नाटक को मनुष्य के हित के पक्ष में देखते हैं। नेमिचंद्र जैन जैसे प्रसिद्ध रंगकर्मी का मानना है कि नाट्य रचना के लिए जीवन की अनुभूति के आधारस्तंभ तक जाना आवश्यक है। नाटककार में आंतरिक एवं वाह्य दोनों रूपो में गहरी संवेदना व्याप्त होनी चाहिए। उनकी दृष्टि में नाटक दर्शक तक पहुंचने से ही सक्षम होता है।

" नाटक में हर भाव, विचार, पात्र, स्थिति और वातावरण ऐसा होना आवश्यक है, कि वह मूर्त और रूपायित हो सके, तभी वह रंगमंच पर काम आ सकता है और दर्शक वर्ग तक पँहुच सकता है।"[6]

इस प्रकार समकालीन नाटककारों के दृष्टिकोण से नाटकों के स्वरूप में बहुत सारे परिवर्तन देखे जा सकते हैं। वह नाटकों को केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, अपितु जीवन की सार्थकता और उसकी उपादेयता को भी रेखांकित करते हैं, और नाटकों को व्यापक रूप से विस्तार देते हैं। नाटक में एक साथ ही जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों पक्षों की भाव प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति की जा रही है।

पाश्चात्य मान्यतायें-

पाश्चात्य देशों की सांस्कृतिक प्रेरणा के उत्स यूनान और रोम है। अगर हमें पश्चिमी नाटकों के विषय में जानना हो, तो यूनान और रोम के नाटकों को जानने की कोशिश करनी चाहिए। पश्चिम में नाटक का उद्भव सबसे पहले यूनान में हुआ। यूरोप के नाटक शास्त्र के प्रथम आचार्य अरस्तू हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र में जो स्थान भरतमुनि का है वही स्थान पाश्चात्य में अरस्तू का है। पश्चिम के नाटककारो ने भी नाटक की कथावस्तु को पांच भागों में बांटा है- एक्सपोजीशन (आरंभ), राइजिंग ऑफ एक्शन (द्वन्द्व का विकास), क्लाइमेक्स (चरम बिंदु),डिनॉउमेंट (निगति) और कैटास्ट्रॉफ़ी(पतन) यूनान के नाटकों में संकलन त्रय(देश,काल,कार्य) का कंसेप्ट अरस्तू ने दिया है, इनके नाटकों का उद्देश्य विरेचन या कैथार्सिस है।

अरस्तू का मानना है, कि मनुष्य बाल्यावस्था से ही अनुकरण करता है, अभिनय के द्वारा सब का अनुकरण कर अपने को श्रेष्ठ बताने की चेष्टा करता है। पश्चिमी साहित्य में सबसे पहले ट्रेजडी नाटक पर दृष्टिपात करने वाले अरस्तू हैं। नाटक एवं महाकाव्य की तुलना करते हुए दुखांत नाटकों का प्रभाव महाकाव्य की अपेक्षा अधिक होता है। पश्चिम के विभिन्न राष्ट्रों में आमजन की कृतियों के आधार पर ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। रहस्य और चमत्कार संबंधी नाटक वहां पर खेले जाते थे इन्हीं नाटकों से इंग्लैंड आदि यूरोपीय राष्ट्रों के आधुनिक नाटकों का विकास हुआ है। शेक्सपियर का आविर्भाव रोमांटिक युग में हुआ। उन्होंने प्राचीन रूढ़ि नियमों की अवहेलना कर रंगमंच के अनुकूल नाटक रचे।

उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशक में इब्सन के आगमन से पाश्चात्य नाटकों के सृजनात्मक विधान में बहुत सारे परिवर्तन हुए। इब्सन ने नाटकों को समाज और यथार्थ की ओर मोड़ा और साथ ही साथ सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से हल करने का प्रयास किया। इसके बाद जॉर्ज बर्नार्ड शा ने सामाजिक जीवन से प्रभाव ग्रहण कर समस्या प्रधान और प्रश्न प्रधान नाटक लिखा।

आधुनिक पाश्चात्य नाटककारों में ब्रेख़्त का स्थान अतुलनीय है। ब्रेख़्त ने नाटकों से भावुकता और रूढ़िगत नाटकीय सज्जा की केचुली उतार फेंकी है।" ब्रेख़्त का अभिनेता केवल अभिनय ही नहीं करता, बल्कि इसका प्रदर्शन भी करता है। उनके नाटकों में अभिनेता केवल दोहरा जीवन ही नहीं जीता, बल्कि वह एक तीसरे रूप में भी प्रकट होता है; जो इतिहास के इसी प्रकार के अन्य पात्रों का आइना भी बन जाता है।"[7]

भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण में हम देखते हैं कि भारतीय नाट्य दृष्टिकोण रसवादी है, तो वही पाश्चात्य दृष्टिकोण बुद्धिवादी, जहां भारतीय नाटक अपने वातावरण स्थिति के अनुसार सुखांत है तो वही पश्चिम के नाटक दुखांत है। कुल मिलाकर यह है, कि नाटक अपने समाज से संवाद करता हुआ जीवन दर्शन को संपूर्णता में प्रस्तुत करता है। इसके स्वरूप समय-समय पर बदलते रहते हैं।

भारतीय नाट्य परंपरा:-

मनुष्य में मनोविनोद की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। जैसे शरीर की भूख प्यास मिटाने के लिए अन्न-जल की आवश्यकता महसूस होती है, ठीक उसी प्रकार मानसिक तृप्ति के लिए मनोरंजन आवश्यक है। फुर्सत के पल में अपनी थकावट को दूर करने के लिए गीत कथा के माध्यम से मनुष्य अपना मनोरंजन करता रहा है। धीरे-धीरे इसमें अभिनय कला भी सम्मिलित होती गई। नाटकों का अपना महत्व है, क्योंकि यह जनजीवन के ज्यादा नजदीक होते हैं इसलिए यह जनता के आमोद प्रमोद का प्रमुख साधन है।

संस्कृत नाटकों की परंपरा अश्वघोष से प्रारंभ होती है ऐसा माना जाता है।अपने नाटकों में अश्वघोष ने गद्य एवं पद्य दोनों रूपो का प्रयोग किये है।अश्वघोष ने संस्कृत की जिस नाट्य परंपरा को स्थापित किया, उसका उत्कर्ष कालिदास के नाटकों में हुआ।कालिदास, सोमिल, भास और कवि पुत्र को अपना अगुआ मानते हैं।

भास की लोकप्रिय रचनाओं में स्वप्नवासवदत्ता, चारुदत्ता तथा प्रतिमा आदि है।

संस्कृत नाटककारों में कालिदास अतुलनीय है इन्होंने विकमोवर्शीयम्, मेघदूतम्,मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञान शाकुंतलम् जैसे विश्व प्रसिद्ध नाटकों का सृजन किया। ये नाटक भारतीय और पाश्चात्य मंचों पर कई बार मंचित होकर विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में शुमार हुए हैं। कालिदास के बाद शुद्रक का 'मृच्छकटिकम' महत्वपूर्ण

नाटक रहा है, इस नाटक में सामान्य जीवन के विभिन्न चरित्रों की वस्तुविन्यास, गतिशीलता, स्वाभाविकता और वैविध्य पूर्ण संवाद मानवीय जीवन के इतना निकट पहुंचा देती है कि यह सार्वकालिक हो जाता है। हर्षवर्धन की नागानंद, प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटकों में आलंकारिता देखी जा सकती है। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' अपने ढंग का अनुपम नाटक है। उत्तररामचरितम् के रचनाकार भवभूति को कालिदास के समानांतर दूसरा स्थान दिया जाता है। उत्तररामचरितम् में वियोगी राम की आंतरिक मनोदशा का दृश्यस्पर्शी अंकन कर सर्वप्रथम मानवीय संवेदना का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।

भवभूति के बाद संस्कृत नाटकों का पराभव होने लगा। धीरे-धीरे मुगल काल में नाटक रचना प्राय: बंद सी हो गई किंतु लोक जीवन में लोकनाट्यों की परंपरा जीवित रही। इसी क्रम में सत्रहवीं से लेकर उन्नीसवीं सदी तक अनेक लोक नाटक प्राप्त होते हैं, जो प्रायः प्रादेशिक भाषा में रचे बसे थे।

हिंदी का पहला नाटक कौन है इस पर बहुत सारे विवाद हैं। बहुत सारे आलोचक नाटककारों द्वारा भिन्न-भिन्न नाटकों को प्रथम नाटक माननें की संकल्पना मिलती है, पर इस संधि काल में भारतेंदु जी ने अपने पिता गोपालचंद गिरधरदास द्वारा लिखित नहुष नाटक को हिंदी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है।

भारतेंदु युगीन नाटक-

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी के सर्वप्रथम मौलिक नाटककार हैं। उनके प्रादुर्भाव से हिंदी नाट्य रचना को एक नई दिशा प्राप्त हुई। उन्होंने न केवल नाटक को युगीन समस्याओं से जोड़ा बल्कि नाटक और रंगमंच के परस्पर संबंध को जानते हुए रंगकर्म भी किया। भारतेंदु ने हिंदी नाटक के विकास के लिए प्रायोजित ढंग से संपूर्ण आंदोलन की तरह काम किया। भारतेंदु युगीन नाटककारों ने पारसी नाटकों के प्रतिकूलजनसामान्य को जागृत करने एवं उनमें आत्मविश्वास जगाने के उद्देश्य से नाटक लिखे हैं। इन नाटकों में देशप्रेम, न्याय, त्याग, उदारता जैसे मानवीय मूल्य नाटकों की मूल संवेदना बनकर उभरे हैं। डॉ गिरीश रस्तोगी की राय भी यही है, उन्होंने लिखा है कि"भारतेंदु युग के साहित्य में देश भक्ति लोकहित, सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्निर्माण और स्वतंत्रता की चेतना उद्भूत हुई। इसी युग ने देश के जनजीवन में राजनैतिक चेतना का जागरण हुआ और नवशिक्षित मध्यवर्ग में अंग्रेजी की साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण, काले गोरे के भेदभाव का विरोध प्रारंभ किया। उस युग के साहित्यकारों ने देश को पारस्परिक भेदभाव भूलने की प्रेरणा दी और संगठित जागरण का मंत्र दिया।"[8]

नाटकों की रचना में भारतेंदुयुगीन नाटककारों ने संतुलित दृष्टिकोण अपनाया। संस्कृत नाट्य शास्त्र, बांग्ला की नाट्य पद्धति तथा अंग्रेजी नाट्य विधान, सभी के सहयोग से अपना नाट्यदर्श प्रस्तुत किये। भारतेंदु ने गर्भांक को दृश्य के अर्थ में स्वीकार किया और बांग्ला नाटकों की ओर संकेत करते हुए कहा कि "प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारंबार दृश्यों को बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक-अनेक गर्भांक की कल्पना की जाती है।" नांदीपाठ, प्रस्तावना विषकम्भक, प्रवेशक, अंकावतार, अंकमुख आदि की योजना पर उन्होंने अधिक बल नहीं दिया। वह आलिंगन, स्नान, यात्रा, मृत्यु, आदि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्जित दृश्यों की योजना भी उन्होंने की।

भारतेंदु युगीन नाटककारो ने कथा विधान सरल रखा है। घटनाओं की अधिकता में प्रधान कथावस्तु उलझ कर जटिल नहीं बन जाती। उसमें पात्रों की विकास की शक्ति है, शिथिलता का अभाव है, आकस्मिक एवं अस्वाभाविक घटनाओं के अभाव में भी कथा की रोचकता नष्ट नहीं होती है। इन नाटककारों ने पात्र योजना में उच्च वर्गीय पात्रों को ही प्रधानता दी है। देवता, ऋषि, राजा, महंत इन्हीं का चित्रण किया गया है। मौलिक एवं युग-जीवन को लेकर चलने वाले नाटकों में निम्न वर्गीय पात्रों का भी चित्रण किया गया है।

भारतेंदु युगीन नाटककारों की संवाद योजना प्रायः नाटकीय गुणों से युक्त है। कथोपकथन पात्रों की मनोदशा के व्यंजक हैं। बातों का वार्तालाप उनकी सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। भाषा का प्रयोग भी पात्र के अनुकूल किया गया है। प्रधानतः कथोपकथन छोटे और प्रभावशाली हैं,किंतु भावपूर्ण एवं रसात्मक स्थलों पर वे लंबे हो गए हैं।

भारतेंदु युगीन लेखकों की एक मुख्य विशेषता यह है, कि वे प्राय व्यंग्य का प्रयोग यथार्थ को तीखा बनाने में करते हैं, दरअसल उसका एक कारण यह भी है कि तत्कालीन पराधीनता के परिवेश में अपनी बात को सीधे तौर पर कह पाना संभव नहीं था। इस कारण जहां भी राजनीतिक सामाजिक चेतना के बिंदु आए हैं वहाँ भाषा व्यंग्यात्मक हो चली है इसलिए हम देखते हैं कि भारतेंदु युगीन नाटककार ज्यादातर प्रहसन लिखे हैं।

डॉ सुशीलधीर का कथन उल्लेखनीय है-" प्रहसनों द्वारा समाज सुधार का आंदोलन पश्चिम में सहले से प्रचलित था। भारतेंदु युगीन नाटककारों ने उससे प्रभावित होकर ऐसे नाटकों की रचना की।"[9]

भारतेंदु युग के नाटक उद्देश्य पूर्वक लिखे गये थे। इन नाटकों की भाषा आम आदमी की भाषा; है लोक जीवन के प्रचलित शब्द, मुहावरे एवं अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के सहज चलन में आने वाले शब्द नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। रंगमंचीय दृष्टि से ये नाटक मुख्यतः भारतीय परंपरा की रीतियों का अनुसरण करते हैं, जैसे नांदीपाठ, मंगलाचरण आदि।

समकालीन हिंदी नाटक के परिचय और प्रवृत्तियों को हमनें जाना कि आधुनिक भाव बोध और उसमें मानवीय संवेदना को किस तरीके से समकालीन हिंदी नाटक अभिव्यक्त करता है। प्रत्येक युग की भिन्न-भिन्न परिस्थितियां होते हुए भी मानवीय स्वभाव एक जैसा ही बना रहता है उसकी आंतरिक वृत्तियां ऐसी होती है जो युग के साथ नहीं बदलती है। समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच मूलतः प्रयोगधर्मी रहा है। समसामयिक जीवन में उत्पन्न होने वाली भिन्न-भिन्न जीवन परिस्थितियों का कटु साक्षात्कार इन नाटकों के द्वारा किया गया। इनमें नए नए संदर्भों की प्रवृत्तियां दिखाई देती है। हर युग में मनुष्य और समाज के अंतर संबंध में परिवर्तन और बदलाव देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

सिद्ध कुमार, नाट्य प्रयोजन (लेख) समकालीन भारतीय साहित्य, अंक जनवरी-फरवरी 2000
मुक्तिबोध रचनावली-भाग 4, पृष्ठ 80
The Necessity Art, Brettch, page-10
डॉक्टर स्वामी प्यारी कौड़ा, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक और रंगमंच,पृष्ठ 216
भारतेंदु ग्रंथावली-भाग 2, परिशिष्ट पृष्ठ 421-422

नेमीचंद्र जैन, रंगदर्शन ,पृष्ठ 37
बलवंत गार्गी, रंगमंच ,पृष्ठ 262
डॉ गिरीश रस्तोगी, हिंदी नाटक सिद्धांत और विवेचना ,पृष्ठ 63
डॉ सुशीलधीर, भारतेंदु युगीन नाटक ,पृष्ठ 63